दनुज किंकर गण में तनु धरि शिर काहि न नायो ॥ जरत फिरत त्रयताप पापवश काहु न हरि करि कृपा मिलायो। जतन अनेक किये सुखकारण हरिपद विमुख सदा दुख पायो। अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत विपतिजाल जग छायो। मोकों नाथ उचित ही यह गति सुखनिधान निजपति बिसरायो। अब तज कोप करहु करुणा हरि तुलसिदास शरणागत आयो। येही समझ चरण चित लायो।

(स्वरसे) हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !

(कयाधुका प्रवेश)

कयाधु–हाय ! बेटा! तेरी यह गति ! तेरे पिताने तुझको दो बार मारनेका विचार किया, परन्तु भगवानने तेरी रक्षा की, हाय ! हाय ! ! संसारमें पितासे पुत्रकी भी कहीं ऐसी गति होती सुनी है? बेटा ! मेरा कलेजा फटता है, परमेश्वरने माकी आत्मा बडी कोमल बनाई है, तेरे बदले महाराज मुझको मरवाडालें तो पाप कटै, अब मैं अपने लालको. कहां छिपाऊं?

(प्रह्लादका शिर छातीसे लगाकर) बेटा ! वह दुष्ट अबतक तेरे मारनेका विचार कर रहा है, इसलिये तू मेरे संग बनको भग चल, मैं चलनेकी सब तैयारी कर लाई हूं।

(बगलके नीचेसे पोटली निकालकर दिखाती है)

प्रह्लाद–मा ! ये क्या ? तू सचमुच भगनेकी तैयारी कर लाई, मैं यहांसे भगचलूं? क्यों ? ना मा ! मैं कभी नहीं भगूंगा, भगनेसे श्रीहरि क्या कहेंगे ? हरिके सहायक हुये पीछे हमको किसका डरहै ? किसीके डरसे मैं कभी नहीं भगा चाहता, परन्तु कभी कभी संसार छोडकर भगा चाहता हूँ, उसका कारण यह है कि,संसारी झगडोंसे बारंबार हरिसेवामें बाधा होती है, और हरिसेवामें मेरे प्राणभी जाँय तो चिंता नहीं, हरि मेरे प्राण,हरि मेरी आशा,हरि मेरे सर्वस्व हैं तू वृथा क्यों डरती है ? (कयाधुके गलेसे लिपटकर) जो तुझको भय लगता हो तो हरिभजन कर (स्वरसे) हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !

कयाधु-(अंचलसे प्रह्लादका मुख पोंछकर) बेटा ! मेरी छाती तो बैठगई थी अब तेरे हिम्मत बढ़ानेसे फिर धीरज हुआ, भगवान् तुझको चिरंजीव रक्खें।

(प्रह्लादके माथेपर प्यारसे हाथ फेरकर जाती है)

प्रह्लाद--(गद्गदस्वरसे) आहा ! माका प्यार कैसा निर्मल है, बिचारी अज्ञानके कारण डरती है, भोली है, पूरे ज्ञानियोंको तो अपने आप ईश्वरमें विश्वास हो जाता है, भोले समझानेसे मान लेते हैं परन्तु ईश्वर की निर्हेतुक कृपा विना अधूरे मनुष्योंके सुधरनेका कोई उपाय नहीं है.

(विषान्नपात्र लेकर मंत्री आता है)

मंत्री--प्रह्लाद ! कल रातसे तुमने कुछ नहीं खाया इस कारण तुम्हारा मुख उतर रहा है, बालकको इतनी बरदास्त कहां ? तुम्हारे पिता बडे कठोर हैं, इसलिये उनसे छिपाकर मैं तुम्हारेलिये यह भोजन लाया हूं तुम दो ग्रास खाकर पानी पीलो तो मेरे जीमें जी आवै ।

प्रह्लाद-(मनमें) ये काम इसके स्वभाव-

विरुद्ध है बहुतकरके पिताकी संमतिसे इसमें विष मिला होगा (प्रकट) मंत्री ! इसके भोजन करनेमें हमको कुछ बाधा नहीं परन्तु हम श्रीहरिअर्पण किये बिना कुछ नहीं खाते और इस अन्नमें हमको संदेह है इसलिये इसको हम भोग नहीं लगा सक्ते ।

मंत्री-(मनमें) जो एक तीरसे दोनों पंछी मारे जावें तो और भी अच्छा हो. (प्रकट) राजकुमार ! संदेह मत करो; सुखसे भोग लगाओ और जो कुछ संदेह होगा तो हरि क्यों पावेंगे (विषान्न रखजाता है)

प्रह्लाद -कैसे मिटै हिय अकुलान ।
कारिये कहा कछू नहिं सूझत मन अति होत गिलान।
जिहि श्रीमुख नवनीत सुशोभित करत मधुर मुसकान॥
तिहि सन्मुख विष अन्न परोसत रहैं कौन बिधि प्रान।
जगके लोग हँसो किन मोकों धर्महु गये न हान।
काहू भाँति न मोते बनिहैं हरिहित यह विषदान ।
कैसे मिटै० ।

(प्रह्लाद विषान्न भोजन करनेकों तय्यार होता है उससमय सहसा गोपालमूर्ति प्रकट होकर एक हाथसे उसका हाथ पकड लेते है और दूसरे हाथसे आप विषान्न भोजन करने लगते है ।)

प्रह्लाद-(हरिचरणोंपर मस्तक रखकर)

सो०-धन्य धन्य गोविंद, विपतिहरन मंगलकरन।
भक्तचकोरनचंद, दयासिंधु संशय शमन ॥

हे प्रभु! इस समयका सुख अकथनीय है, मैं अपने भाग्यकी बड़ाई कौनसे मुखसे करूं? श्रीचरण-प्राप्तिका जो अलौकिक आनंद इस समय मुझको मिला है उसके ऊपर मैं कोटि कोटि ब्रह्मांड न्यौछावर करता हूं, पिताने मुझको कैद किया, मेरे लिये विषान्न भेजा यह उनका परम उपकार हुआ, क्योंकि इसीके कारण आज आपका सुरदुर्लभ दर्शन मुझको मिला! परंतु हाय?

श्रीगोविंद यह अन्न भोग लगाते हैं, मेरे लिये प्रभुको विषान्न भोजन करना पड़ता है इससे अधिक दुःख और क्या होगा? (भगवान्‌का हाथ पकडकर) नाथ! मैं बालक हूं, क्षुधितहूँ, कुछ महाप्रसाद मेरे लियेभी तो छोडिये।

श्रीहरि-(मुस्कुराकर) वत्स प्रह्लाद! अब तू आनन्द-से यह प्रसाद ले, जब बल करके हमारा भाग लेता

था, हमने भी छल करके अपना ले लिया, तू अपना काम करताथा, हमने अपना काम किया, प्रह्लाद! तू क्या अपनी आत्मा और देहको हमारी नहीं जानता? जो तैंने विषान्न भोजन करनेका साहस किया अथवा तू हमारी अतर्क्य शक्तिको भूल गयाथा, जो हमको विषान्न निवेदन करनेमें तुझे इतना भय हुआ? बेटा! लाज न कर, हम जानते हैं सच्ची प्रीतिका आवेश ऐसाही प्रबल होता है, हमकोभी अपने अनन्यभक्त अपनी देहसे अधिक प्यारे हैं, हमने इस अन्नका सब दोष दूर करदिया अब तू प्रसन्नतासे इसका भोजन कर।

प्रह्लाद-(बालस्वभाव सुलभ चरण पकडकर)

नाथ! यह वात्सल्य यहांही है परंतु जो आप मुझे महाप्रसाद देते हो तो पहले अपनी नित्य कैंकर्य दो, अब मैं नित्य कैंकर्य लिये बिना आपके श्रीचरण नहीं छोडूंगा, आप जानते होंगे कि और बालकोंकी तरह प्रह्लाद अपनी मनभाई चीज लिये बिना अपना हठ नहीं छोडता।

श्रीहरि–प्रह्लाद! तेरेलिये हमको अदेय कुछभी नहीं है, परंतु तेरा यह शरीर हमको बहुत प्यारा है, इसलिये इसके पवित्रचरित्र कुछदिन हमको और देखने दे। (अपने श्रीहस्तसे प्रह्लादके मुखमें महाप्रसाद देते हैं,)

प्रह्लाद–(प्रेममग्न होकर भगवान्‌की रूपमाधुरी निहारते २)

महाराज! छोटा ग्रास दीजिये ये ग्रास मेरे मुखमें नहीं समाते।

श्रीहरि–प्रह्लाद! अबतक तूं हमारे संग चलनेका हठ करता था, परन्तु अब तेरा संग हमसे नहीं छोडा जाता, हम समयोचित काम करेंगे, परन्तु तुझसे क्षणभरके लिये अलग न होंगे।

प्रह्लाद–ऐसी कौन प्रभुकी रीति।

बिरद हेतु पुनीत परिहरि पामरन पर प्रीति ॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाय।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु यादवराय ॥

कामर्मोहित गोपिकन पर कृपा अतुलित कीन ।
जगतपिता विरंचि जिनके चरणकी रज लीन ॥
नेमते शिशुपाल दिन प्रति देत गिन गिन गारि ।
लीन कीनों आपहीमें नृपन बीच प्रहारि ॥
व्याध चित्त दै चरण मार्यो मूढमति मृगजानि ।
सो सदेह सुलोक पठयो प्रकट कर निज बानि ॥
कौन तिनकी कहै जिनके सुकृत अरु अघ दोइ ।
प्रकट पातकरूप तुलसी शरण राख्यो सोइ ॥

(दूरसे हिरण्यकशिपुके आनेकी आहट सुनाई देती है.
और भगवान तत्काल अंतर्धान हो जाते हैं.
प्रह्लाद चित्रके समान देखता रहजाता है.)

प्रह्लाद–हरि कहां गये उनके प्रकाशसे अबतक ये कारागार वैकुंठ हो रहाथा, अब यह फिर कारागार होगया, हाय ! हाय ! ! जैसे थोडी वर्षासे गर्मी अधिक बढती है वैसे क्षणभर हरिदर्शनसे मेरी त्वरा बढ गई, देखते देखते हरि कहाँ चले गये? और चले गये तो दासको क्यों छोड गये? प्रभु ! दर्शन दो ! दर्शन दो ! ! .

(हिरण्यकशिपु आता है.)

प्रह्लाद–ये पिता आये क्या ? पिताको आते देख हरि अंतर्धान होगये, हाय ! क्या पिता ऐसे मंदभाग्य हैं कि इनको हरिका दर्शन न होगा, आहा ! कैसा सुंदर रूप ! कैसी सुन्दर मंदमुसकान ! पिता एकवार आपभी प्रीतिसे हरिनाम लो।

(स्वरसे) हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !

हिरण्य०–रे पाखंड ! दर्बुद्धि ! पिताके संग हँसी? विषान्नभोजनसे तेरे प्राण बचगये इसपर तू इतना इतराता होगा।

प्रह्लाद–राम! राम!! पिता ! आप यह क्या आज्ञा करतेहो? आप पिता आपसे ये देह उत्पन्न हुई है और इस देहसे मैंने हरिनाम पाया है फिर आपके संग हँसी ? आप कभी ऐसा विचार मत करना।

हिरण्य०–प्रह्लाद ! मालूम होतां है कि अब तेरी आंखें खुलगईं तुमको दुःख व्यापा. भला बेटा !

अबभी कुछ नहीं बिगडा, तू हरिनाम छोड दे, तुझे कुछ दुःख न होगा।

प्रह्लाद–पिता! मुझको सुखसे दुःख प्यारा है, क्योंकि दुःखमें हरि याद आते हैं आप फिर मुझको विषान्न भेजो मैं फिर हरिदर्शन पाऊं पिता! हरिभजनका सुख कहनेमेंभी नहीं आता (स्वरसे) हरिबोल! हरिबोल!! हरिबोल!!!

हिरण्य०–मूर्ख! अभी तेरा अभिमान नहीं गया? तुझको सुखसे दुःख प्यारा है, तुझको अब और अधिक दुःख देनेका उपाय किया जायगा। दुःष्ट! मैं ऐसे कुलांगारका मुख नहीं देखा चाहता (क्रोधकरके जलदी जाता है)

प्रह्लाद–(हाथ जोडकर) आप मुझको चाहे जितना दुःख दो परन्तु हरिसे वैर मत करो, हरिसे वैर करनेमें आपका भला न होगा (जाता है)

अष्टमदृश्य ८.

श्मशानस्थान प्रज्वलित अग्नि.

(षण्डामर्क उपस्थित, प्रह्लादका बंदीभावसे प्रवेश.)

षण्ड–(युक्तिसे) प्रह्लाद ! तू वारंवार हरिभजनके लिये हमसे कहता है, और तेरी बातें सुनसुनकर हमारे मनमें भी यह बात आती है, परन्तु हिम्मत नहीं पडती, जो तू इस प्रज्वलित अग्निमें कूदपडै और जीता निकल आवै तो हम अकुतोभय होकर हरिनामसंकीर्त्तन करें ।

प्रह्लाद–(मनमें). गुरुजीने पितासे सलाह करके मुझको जीतेजी भस्म करनेकी यह युक्ति निकाली है (प्रकट) अच्छा गुरु ! ऐसाही हो ।

(कीर्त्तनके सुरमें)

श्रीहरि ये दया करो । गुरुको भ्रमजाल हरो ।
गुरुमुख हरिनाम पाऊं । रहसि रहसि बहुरि गाऊं ।
यद्यपि विरोधी देह । तिलभर. न तासों नेह ।
तोहू हरि भजन आस । चाहत या समय दास ।

२

आगे जो उचित होय। कीजिये दयाल सोय।
मैं अशक्त परमदीन। हित क्षति विवेकहीन।

(अन्यस्वरसे) हरिबोल! हरिबोल!! हरिबोल!!! (अग्निमें कूदता है)

अमर्क—दादा! अच्छी हुई, प्रह्लाद अपने अभिमानसे आप मारागया।

षण्ड—भाई! सब बुद्धिके खेल हैं, जो बात महाराजसे न बनी मंत्रीसे न बनी सो आज हमारी विशालबुद्धिसे क्षणभरमें बनगई।

अमर्क—दादा! इस बुद्धिका नहीं पारावार है, त्रिलोकीकी बुद्धि इसका पासंगभी नहीं हो सक्ती, जिसपर लोग हमारी बातें सुनकर हँसदेते हैं, निस्संदेह संसारमें मूर्खता फैल रही है।

(पाठशालाके बालकोंका प्रवेश)

प्र॰बालक—यार! मैंने तो सुना है कि, गुरुजी मर्घटको गये और वहां चिता जलरही है।

दू॰बालक—अरे यार! चिता तो जलरहीहै, परन्तु वे दोनों भाई भी सामने बैठे हैं।

तीο बालक–अजी! चिता जलरही है तो वे दोनों कहाँसे आये? उनके भूत होंगे।

चौο बालक–अरे भैया! ये तो जीतेही भूत हैं, इनका भूत क्या होगा?

प्रο बालक–यार! मुझे तो डर लगता है, मैं तो घरको भगता हूँ।

चौο बालक–अबे! पत्थर इकट्ठे करलो पत्थर! जो अपनी ओर आवें तो खैंचकर पत्थर मारना।

(लडके पत्थर चुनते हैं और षंडामर्क इनकी आवाज सुन, साटीले इनकी ओर झपटते हैं, लडके पत्थर फेंकते हैं.)

दूο बालक–बस गुरुजी! दूरही रहना, अब पास आओगे तो पत्थर खाओगे।

षण्ड–क्यों? बेत खानेकी मनमें आई होगी? बच्चा! चट शाला छोडकर कैसे चले आये?

तीο बालक–गुरुजी! हम तो तुम्हारी चिता देखने आये थे, हम क्या जानें हमारी जानको तुम यहां भी भूत हो जाओगे।

अमर्क-बच्चा ! हम भूत होगये ? अच्छा, तो देखो अब कैसे तमाशा दिखाते हैं ।

चौथा बालक-सावधान ! सावधान ! भूत आये, पत्थर फेंको ।

(सब बालक पत्थर फेकते हैं, षंडामर्क भागते हैं)

अग्निकुंडसे प्रह्लाद-(सत्वर) हरिबोल ! हरिबोल!! हरिबोल ! ! !

षंड-अरे ! प्रह्लाद अबतक अग्निमें जीता है अभी मौत नहीं आई !

(अग्नि मूर्त्तिमान प्रह्लादको गोदमें लेकर प्रगट होता है)

प्रह्लाद-(बाहर आकर स्वरसे) हरिबोल! हरिबोल!! हरिबोल ! ! !

(षंडामर्क प्रह्लादका देखतेही भगजाते हैं, पाठशालाके सब बालक प्रह्लादको घेर लेते हैं, प्रह्लाद सबसे छाती लगाकर मिलताहै)

सब बालक-(प्रीतिसे) भैया ! भली हुई तुम्हारे प्राण बचे, हम तो यहाँ गुरुजीकी भस्म देखने आये थे.

प्रह्लाद-जो लोग हरिविमुख हैं वह तो आपही भस्म

हो रहे हैं, परन्तु तुमको अपने मनमें किसीका बुरा न विचारना चाहिये, देखो ! गुरुने मुझको छलसे भस्म करनेके लिये चिता बनाई थी, परन्तु हरिकृपासे मेरा बालभी बांका नहीं हुआ ।

चौथा बालक-प्रह्लाद ! तुम तलवारसे न मरे, हाथीके पांवके नीचे न पिसे,तुमको विष नहीं व्यापा, तुम अग्निमें नहीं जले, इन बातोंका हम सबको बडा अचरज है, तुम कालके गालसे कैसे बच जाते हो ?

प्रह्लाद-भैयां ! अचंरजकी कोई बात नहीं, यह सब हरिनामकी महिमा है, तुम विश्वाससे हरिभजन करो तुमभी सबभीतिसे निर्भय हो जाओगे ।

तीसरा बालक-यह बात हमारी समझमें नहीं आंती, तुम क्या उपाय करते हो सो पहले समझा कर कहो ।

प्रह्लाद-तुम्हारे समझमें नहीं आता यही इसका पेच है और तुम उपाय ढूँढते फिरते हो, इतनीही

तुममें कसर है। प्रत्यक्षमें प्रमाण क्या? तुम मेरी गति आंखसे देख चुके, जबतक तुम्हारे मनमें रत्तीभर कच्चावट अथवा और किसीका आशा या भरोसा रहैगा तबतक तुम संसारी चक्रमें लिपटे रहोगे, तुमको हरिकी प्राप्ति दुर्लभ है, ऊपरकी बातें भीतरका अंधेरा नहीं मेंटसक्तीं, कामधेनु और कल्पवृक्षके चित्र लिखनेसे घरका दारिद्र नहीं जाता, जब तुम श्रीहरिके भरोसे निश्चिंत होरहोगे तब हरि अपना बोझ आप उठालेंगे, हरिके मिलनेके लिये हरिही सिद्ध उपाय हैं।

चौथा बालक—जो एकबार इतना मन पक्का न होय तो कैसी करें?

प्रह्लाद—कुछ डर नहीं, कालांतरमें होजायगा, सुकृतका फल कहीं नहीं मारा जाता, परन्तु मनमें लालसा रहनी चाहिये।

दूसरा बालक—हमको तो गुरुजीकी मारका डर लग रहा है, वह आज बहुत चिढ गये हैं, अब मिलेंगे तो बेतोंके मारे चमडी उधेड डालेंगे।

पहिला बा०-और महाराज यमराजसे क्या कम हैं ? जब वह हमारे मुखसे हरिनाम सुनेंगे तब क्या जीता छोडेंगे ? ।

प्रह्लाद-तुम इन लोगोंसे वृथा डरते हो, इनकी सामर्थ्य कितनी ? मानुषी अधिकार इनके हाथमें है सो जबतक मनुष्य अपने बल भरोसेपर कूदता रहै तबतक ये उसको दंड दे सक्ते हैं, हरिका दृढ विश्वास हुये पीछे इनका बल उसपर नहीं चलता, हरि सबके स्वामी हैं, वह चाहते हैं तो पलभरमें संसारको उलट पलट कर सक्ते हैं, उनहींकी कृपासे मैं सदा निर्भय रहताहूं ।

चौथा बा०-भैया ! हरि किसी बातसे रूठ तो नहीं जाते ?

प्रह्लाद-नहीं,हरि कभी नहीं रूठते, परंतु अविश्वास अभिमान, छल, पाखंड, परपीडा,परस्वत्वापहरण देखकर उसे संसारी नियमोंके अधीन बनारखते हैं.

प्र० बालक-जो हम हरिकी शरण लें तो वे हमारी रक्षा करेंगे ?

प्रह्लाद-निस्संदेह, मेरा दृष्टांत मौजूद है, जो तुम मुझको देखकर हरिशरण हो जावोगे तो मैं आज अपना जन्म सफल समझूंगा, भैया ! हरिभजनका आनन्द मुखसे नहीं कहा जाता, जो हरिभजन करते हैं वोही उस आनन्दको जानते हैं ।

सब बालक-अच्छा प्रह्लाद ! आजसे हम सबने ये झूंठी माया छोडकर हरिशरण ली, अब तू हमारा धर्मगुरु है ।

प्रह्लाद -भैया ! आपसमें गुरु शिष्य क्या ? गुरु तो सबके श्रीहारि हैं, सब मिलकर प्रीतिसे हरिनामसंकीर्त्तन करो (स्वरसे करताल देकर)

हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !

सब बालक-(करताल देकर)

हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !

प्रह्लाद-(कीर्त्तनके स्वरसे भक्तिभावपूर्वक झूमते हुये बीचमें खडे होकर)

हरिबोलो हरिबोलो हरि बोलो मन ।

दो बालक—छोडो मोह माया भ्रम छाया, संसार स्वप्न ।

प्रह्लाद—एकबार हरि बोलो रे !

दूसरे दो बालक—करो भक्तिसहित, मानरहित, हरिसंकीर्त्तन ।

प्रह्लाद—मनमें ध्यान धरो रे !

दो बालक—करो प्रेमसहित पूजा, हरिसम नहिं दूजा, पायो हरिदर्शन ।

प्रह्लाद—ऐसे दयालु हरि रे !

सब बालक—हम प्रेमभिखारी, हरि प्रेमके धनी, करैं प्रेम वितरन ।

प्रह्लाद—हरि दया भवन रे ।

(दुगुनमें यह पद गाते २ सब बालक प्रह्लादकी परिक्रमा देते हैं)

(षण्डामर्कके संगा हिरण्यकशिपुका प्रवेश.)

(पाठशालाके बालक इनको देखतेहि एक-
एक कर खिसक जाते हैं)

हिरण्य०—(क्रोधसे) तुम सत्य कहते थे, प्रह्लादने सब पाठशालाके बालकोंको बहका दिया, चिंता नहीं

जड कटनेसे शाखा प्रशाखा अपने आप सूख जायँगी। इस समय प्रह्लादकी दुर्गति करो, यह कुलकंटक विषाग्निसे बच गया है, इस कारण इसको बडा दर्प हो रहा है, अब हम चाहते हैं कि एक भारी पत्थरके संग इसको बांधकर पर्वतकी चोटीपरसे समुद्रमें डाल दिया जाय, इसमें प्रथम तो समुद्रकी जडसे पत्थरही इसको न उकसने देगा, फिर किसीप्रकार उकसाभी तो जलजंतु इसको चटनी कर जायँगे, और जब प्रह्लाद न रहेगा तो इन बालकोंका अर्धविश्वास फेरते क्या देर लगेगी ?

षण्डामर्क—(हाथ जोडकर) यह विचार बहुत अच्छा है इस युक्तिसे प्रह्लाद कभी नहीं बच सक्ता ?

हिरण्य०—अच्छा तो चलो प्रह्लादके हाथ बांधकर ले चलो, हम अभी चलकर बधिकोंको यह आज्ञा देते हैं ।

षण्डामर्क—जो आज्ञा महाराज !

(प्रह्लादके हाथ बांधकर हिरण्यकशिपुके पीछे पीछे ले जाते हैं)

नवमदृश्य ९.

(गंभीर समुद्र और किनारे उच्चपर्वत.)

(दैत्यगण और प्रह्लादका प्रवेश.)

एक दैत्य–देखो प्रह्लाद ! इस भयंकर समुद्रकी ओर देखो, इसकी लहरें पवनके वेगसे आकाशव्यापी हो रही हैं, मकर मत्स्यादि अनेक तरहके जलजंतु मुख फैलाफैलाकर आहारके लिये जहांतहां भटकते हैं, ऐसे ऊंचे पर्वतके शिखरसे शिला बांधकर इस भीषण समुद्रमें गिरना, पवनकी झकोर, पानीकी हिलोर और ग्राहादिक प्रबल जंतुओंकी कराल डाढोंसे बचना सहज नहीं, तुम निस्संदेह कईबार मृत्युके मुखसे बचे हो परन्तु अबकी बार सबसे अधिक संकट आया है और सर्पका खिलानेवाला एक न एक दिन सर्पके काटनेसेही मरता है, ये खेल अच्छा नहीं, तुम अबभी अपना हठ छोडदो, हम तुमको महाराजके पास फेर लेचलें ।

प्रह्लाद-जो जीव एक प्रतिज्ञाको निर्वाह न करै उसकी दूसरी प्रतिज्ञाका क्या ? विश्वास और उसके देह धारणसे संसारका क्या उपकार ?

दैत्य-तुम्हारी क्या प्रतिज्ञा है ?

प्रह्लाद-भवसागरकी भयनिवृत्तिके लिये श्रीहरि का अवलंबन ।

दैत्य-अब तो सब प्रकार डूबनेका समय आ पहुँचापिताका आसरा लिये बिना तरनेका कोई उपाय नहीं दिखाई देता ।

प्रह्लाद-यह तो तुमने मृगतृष्णाकी राह बताई, कीचकसे कीचभी धुलती है, भँवरमें फँसनेवाला मनुष्य जितना अधिक बल करता है उतनाही निर्बल होता जाता है ।

दैत्य-तो हरिके भरोसे अब तुम समुद्र तलशायी हो ।

प्रह्लाद-हम माता, पिता, भाई, बंधु छोड सक्ते हैं, इस मिथ्या संसारसे मुख मोड सक्ते हैं, अपने तुच्छ प्राण दे सक्ते हैं परन्तु हरिनाम कभी नहीं छोड सक्ते, हरिके प्रेममें हमारे बुद्धि, मन, प्राण, उन्मत्त होगये.

आहा! हरिसंकीर्त्तनका अलौकिक आनंद हरिकीर्त्तनमेंही मिलता है।

(स्वरसे) हरिबोल! हरिबोल!! हरिबोल!!!

दैत्य–तुमको यह भयानक समुद्र और अपनी दीनदशा देख कुछ भय नहीं होता?

प्रह्लाद–नहा, इस समुद्रको देखकर तो नहीं होता परन्तु संसारसमुद्रको देखकर बहुत होता है, हरिका अवलंबन बचा रहाहै, यदि हरिका अवलंबन न होता तो नजाने हमारी क्या गति होती? हमने सब ओरसे निराधारहोकर केवल हरिका आधार पाया है इस हेतु जब किसी कारणसे चित्त भयभीत होता है, तब श्रीहरिपर दृष्टि जाती है।

दैत्य–अच्छा, तुम अपने हरिका ध्यान करोजितनेमें हम तुम्हारे लिये पाषाण लेआवें (जातेहैं)।

प्रह्लाद–दीनानाथ दया प्रभु कीजे।

डूबत दास अथाह जलधिमें कर अवलंबन दीजे।
काम मोह मद मान प्रबल रिपु तिनसों रक्षण कीजे।

बंधु बधिक बहु जाल बिछावत तिनमें फँसन न दीजै ।
पाप पषाण बँधो मोतनुते ताहि पृथक् करि लीजै ।
मायाप्रकृती पवन झकोरत तामें गिरन न दीजै ।
थके अंगबल सकल कृपानिधि शिथिल भये तनु छीजै ।
रामनामसों तरे उपल जल तासम तारन कीजै ।
धायधरहु आरत दुखभंजन पदसेवासुख दीजै ।

(सहसा आकाशसे हनुमानकी पीठपर रघुनाथजीका आगमन)

श्रीराम--वत्स ! प्रह्लाद ! ! क्या इस अथाहसमुद्रको देखकर भयभीत होगया ? तू कहै तो अभी एक अग्निबाणसे इसको सुखादूं तू कहै तो वायुको आज्ञा दूँ जो गिरिशिखरसे गिरतेही जलका स्पर्श कराये बिना तुझको समुद्र तटपर ले जाय, जलपर्यंत पहुँचनेमेंभी तुझको कुछ भय नहीं है, क्योंकि रामनाम अंकित पाषाण तर जाते हैं सो तेरे हृदयमें तो मूर्तिमान् हम राम विराजमान हैं, तेरे संगसे तो यह पाषाण भी तर जायगा और तुझको इतना परिश्रमभी देनेका कुछ प्रयोजन नहीं था? परन्तु तेरे चरण धोवनसे

यह रत्नाकर पवित्र होजायगा, तेरे चरणस्पर्शसे वरुणकी लालसा पूरी होगी । वत्स ! तेरे संसर्गमात्रसे प्राणियोंके बंधन छूटते हैं फिर तुझको भय क्या ?

प्रह्लाद—नाथ ! मुझको इस तुच्छ समुद्रका कुछ भय नहीं है? मैं तो आपके वियोगमें संसारसमुद्रको देख कर भयभीत होगया, प्रभु ! इसके नानारूपधारी ग्राह, मत्स्य, इसकी आकाशव्यापिनी तरंगमाला देखकर मुझको भयहोता है, स्वामी! आप गुप्तरूपसे मेरी रक्षा करनेको सदासंगरहते होतथापि मैं अज्ञानबालक आपके श्रीचरणदेखे बिना क्षणभरमें आकुल होजाता हूं. प्रभु! यह जलराशि ऊपरसे समान भाव धारणकर रहीहै, परन्तु इसके भीतर अनेक पर्वत अनेक कंदरा अनेक जलजंतु और अनेक प्रकारके दुःखदायक पदार्थ छिपरहे हैं, नाथ ! अपनी पुष्टिके लिये ये जल जंतु, और प्राणियोंका संहार करते हैं, परन्तु अपने नाश की इनमेंसे किसीको सुधि नहीं है, प्रभु ! मेरी रक्षा के हेतु आपको इतना श्रम होता है यहभी मुझको अत्यंत दुःखदाई है (चरण पकडकर गद्गद स्वरसे)

नाथ ! ये कोई युक्ति आपसे निवेदन करने योग्य हो अथवा न हो; मैं जानता हूं कि, आप मेरी अपेक्षा मेरे हितको विशेष समझते हो, स्वामीको दासपर सब अधिकार है, आपसे बारम्बार प्रार्थना करनेमें मेरी ढिठाई होती है, तथापि मेरा वश नहीं, मेरी आर्त्ति देखकर मेरा अपराध क्षमा कीजिये, अब मुझसे क्षण-भर आपके श्रीचरणोंका वियोग नहीं सहाजाता, प्रभु ! आप तो दीनजनोंके दुःखको निजदुःखसे विशेष समझते हो, शरणागतोंकी रक्षाके लिये आयुध धारण करते हो फिर मेरे लिये इतना विलंब क्यों ? मैं जानता हूं कि, इसमें भी मेराही अपराध है, परंतु अब यह वियोग नहीं सहाजाता ।

दीनदयालु दया हिय धरिये ।
करुणासिंधु कृपालु कल्पतरु क्यों अपनाय निदरिये ।
सरिता सागर मिले नबिछुरत पुनि क्यों मोहिंबिसारिये।
प्रणतपाल शरणागतवत्सल मिलबिछुरणजिन करिये।

श्रीराम—(प्रह्लादको उठा, हृदयसे लगाकर) वत्स ! वियोग कहां ? मैं तुझसे क्षणभर अलग नहीं

होता, मेरी प्रेमपराधीनता सब जानते हैं, मुझको तेरे इस आदरणीय शरीरसे अलौकिक प्रीति होगई है और तेरे नामसंकीर्त्तन सुननेकी सदा लालसा बनी रहती है इसलिये कुछ काल धैर्य धर, तेरे उत्तम चारित्रोंसे संसारका अमित हित होगा।

प्रह्लाद–प्रभु! जैसी आपकी इच्छा, परंतु मुझको आपके श्रीमुखसे एकबार हरिनाम सुननेकी बडी अभिलाषा है, आपके संग हरिनामसंकीर्त्तन करनेकी बडी लालसा है, मेरी बालबुद्धि समझकर मेरा यह मनोरथ पूर्ण कीजिये।

श्रीराम–(मुस्कुराकर स्वरसे) हरि बोल! हरिबोल!! हरिबोल!!!

प्रह्लाद–(स्वरसे) हरिबोल! हरिबोल!! हरिबोल!!!

श्रीराम और प्रह्लाद–(एकसंग स्वरसे) हरिबोल! हरिबोल!! हरिबोल!!!

प्रह्लाद–(प्रेमभावसे नाचते नाचते)

"जानत प्रीति रीति रघुराई"

नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई । जानत॰
नेह निबाह देह तजि दशरथ कीरति अचल चलाई ॥
ऐसेहु पितुसे अधिक गीधपर ममता राम जनाई॥जा॰
तिय विरही सुग्रीव सखा लखि प्राणप्रिया बिसराई।
मूर्च्छित बंधु विभीषणहीको शोच हृदय सरसाई॥जा॰
घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे भई जहां पहुनाई ।
शबरीके फल सरिस माधुरी कहत न कबहूँ पाई॥जा॰
प्रेम कनोडो रामचंद्रसों भयो न ह्वैहै भाई ।
हनुमतको हिय लाय कहत मैं तेरो ऋणी सदाई॥जा॰
तुलसी राम सनेह शील लखि जो न भक्ति उर आई।
नरतनु पाय कहा फल लीनो पशुसमआयु गमाई ।जा॰
जानत प्रीति रीति रघुराई ॥ १ ॥

श्रीराम—वत्स ! जो लोग सकाम उपासना करतेहैं उनकी कामना सिद्ध करके मैं कृतकृत्य होजाताहूँ, परंतु जो लोग निष्काम भक्ति करते हैं, उनको मैं अपना सर्वस्व देकर भी उनसे लज्जित रहता हूँ ।

प्रह्लाद—नाथ ! आपसे आपही हो ।

(दूरसे दैत्योंके आनेका आहट सुनाई देता है श्रीराम हनुमानकी पीठपर बिराजमान होके तत्काल आकाशमार्गसे पधारते हैं. प्रह्लाद चित्रसा चकित रह जाता है. दैत्य एक बडी शिला उठाकर लाते हैं.)

दैत्य—प्रह्लाद! तुम्हारे हरिने अबतक तुह्मारी रक्षाका कुछ उपाय नहीं किया?

प्रह्लाद—भाई! वह कुछ मेरी प्रार्थनाकी बाट नहीं देखते, उनको करना होगा सो वे करेंगे, तुमको करना होय सो तुम करो।

(दैत्य प्रह्लादको शिलासे बांधकर पर्वतकी शिखरेसे समुद्रमें गेरते हैं)

प्रह्लाद—(गिरती समय स्वरसे) हरिबोल! हरिबोल!! हरिबोल!!!

(समुद्रमें गिरतेही पानी उछलता है. दैत्य जाते हैं)

(पाठशालाके बालकोंका प्रवेश)

प्रथम बालक—(देखकर) हाय हाय! भाई बडा अनर्थ हुआ! प्रह्लाद समुद्रमें डूबगया।

द्वितीय बालक—प्रह्लाद! प्रह्लाद! तेरी ये क्या गति हुई? अब कौन हमारे संग नित्य नये २ खेल

खेलैगा ? कौन हमसे भाईकी तरह प्रीति करेगा ? कौन बात बातमें हरिसंकीर्तन किया करेगा ?

तृतीय बालक–कौन खेलमें जीतकर हमारी राजीके लिये हार मानेगा ?

चतुर्थ बालक–प्रह्लाद ! कल तू हमको हरिभजनके लिये उपदेश देता था, तेरे भरोसे हमनेभी हरिभजनका विचार किया था इतनेमें तेरी ये क्या दशा हो गइ ? तरे बिना अब हम क्या करैं ?

समुद्रमें प्रह्लाद–(स्वरसे) हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !

प्रथम बालक–आहा ! जलमेंसे प्रह्लादका स्वर सुनाई दिया, चलो चलो देखो, क्या अबतक प्रह्लाद जीता है ?

समुद्रमें पुनः प्रह्लाद–(स्वरसे) हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !

(सब बालक दौडकर समुद्रके किनारे जाते हैं और नौकाकी समान शिलापर प्रह्लादको बैठा देख आश्चर्य करते हैं)

सब बालक–प्रह्लाद ! तुम्हारे बंधन छूट गये और तुम पत्थरपर नावकी तरह बैठे हो, यह बडे आश्चर्यकी बात है।

प्रह्लाद–भैया ! बंधन तो हरिचरणोंमें प्रीति होते ही छूट जाते हैं, और रामनामके बलसे पाषाण तरना कुछ आश्चर्य नहीं है।

दूसरा बालक–प्रह्लाद ! तुम्हारा कलका उपदेश सुनकर हमारे मनमें हरिभजनकी रुचि हुईथी, परन्तु आजका हाल देखकर फिर कुछ कुछ संदेह होगया।

तीसरा बालक–जब तुम्हारी यह दशा हुई तो हम को हरिभजनमें कोई सहायक न दिखाई दिया, और सहायक बिना भीतरसे मन अपने आप डिगमिगाने लगा।

प्रह्लाद–भैया ! जबतक तुम्हारे मनमें संदेह है तबतक तुम्हारे बेडापार लंगनेमें भी संदेह है, और हरिभजनके लिये दूसरे सहायककी जरूर नहीं, दृढ विश्वास होनेसे हरि आप सहायक होजाते हैं, भला! मेरा सहायक कौन था ? प्रभुने सब ओर रक्षा की,

जबतक तुम और सहायक ढूँढते हो, तुम हरिकृपाके अधिकारी नहीं हो भैया ! मैं कौन ? मैं भी तो एक महापतित पापपरायण दैत्यकुलका अज्ञान बालक हूँ, मेरे सहारेसे तुम्हारा क्या उपकार होगा ? मुझ जैसे अगणित पामर प्रभुकी कृपाकटाक्षसे पलभरमें तरसक्ते हैं इस हेतु तुम अपना मंगल चाहते हो तो अनन्यभावसे हरिकी शरण लो ।

सब बालक--प्रह्लाद! तेरे उपदेशसे हमारे ज्ञानचक्षु खुल गये, संसारकी झूँठी झिझक लेश भी नहीं रही मनका सब संदेह दूर होगया अब जो हरिइच्छा हो सो हो हम हरिचरण कभी नहीं छोडेंगे ।

प्रह्लाद--(तटपर आकर सब तालकोंको हृदयसे लगा) भैया ! तुम आप भी कृतकृत्य हुये और तुमने मुझको भी कृतकृत्य किया, संसारमें तुम्हारा जन्म सफल होगया, तुम मुझको अमृत पिवा दिया, जो तुम इस विश्वासपर दृढ रहोगे तो तुमको किसीसे कुछ भय नहीं है ।

सब बालक–भैया ! हरिका भये पीछे भी क्या किसीका भय बाकी रहेगा ?

(प्रह्लादसमेत सब बालक स्वरसे)

हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !
हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !

(सहसा हिरण्यकशिपुका प्रवेश)

हिरण्य०–(प्रह्लादको देखकर क्रोधसे) रे दुराचारी ! तू अबतक कैसे बचा ? हमने तुमको समुद्रमें डालनेकी आज्ञा दी थी सो क्या वह लोग तुझे समुद्रके तटपर छोड गये ?

प्रह्लाद–पिता ! वह आपकी आज्ञानुसार पाषाण बांधकर मुझको समुद्रमें फेंक गयेथे, परंतु हरिकृपासे में बचगया, आपको कुछ संशय हो तो देख लीजिये पाषाण अबतक तररहाहै ।

(हिरण्यकशिपु आश्चर्यसे पाषाणकी ओर देखता है.)

प्रह्लाद–पिता ! हरिनामसे समुद्रमें पाषाण तरगया, फिर जो लोग प्रीतिसे हरिभजन करेंगे उनको भव-

सागरसे पार उतरनेमें क्या संदेह है ? हरिभजनकी बराबर आनंद और किसी बातमें नहीं मिलता, आप एकबार मुझ अज्ञान बालककी प्रार्थना मानकर हरिनामसंकीर्त्तन करो ।

हिरण्य०—दुष्ट ! मैं तेरी बात नहीं सुना चाहता, मैं जानताहूं तुझको हरिकी सहायतासे बडा अभिमान आगया हैं, कुछ चिंता नहीं, मैं अपने हाथसे तुझको मारकर यह उत्पात दूर करूंगा ।

(बलपूर्बक प्रह्लादका हाथ पकडकर घसीट लेजाता है और सब बालक पीछे पीछे जाते हैं)

दशमदृश्य १०.

सभामंडप.

(हिरण्यकशिपुका प्रवेश.)

हिरण्य०—(स्वगत) किसी प्रकार प्रह्लाद नहीं मरा! क्या करें? कुछ बुद्धि काम नहीं करती, खड्ग प्रहारमें खड्गका टूट जाना, विषप्रयोगमें विषका असर न होना, अग्निप्रवेशमें अग्निका न जलाना, समुद्रप्रक्षेपमें पाषाणका जलपर तैर आना पदार्थोंके स्वभावसे विपरीत है, और जब पदार्थोंका स्वभाव बदलता चला जाय तो कोई उसमें अपनी क्या युक्ति लडावे ? कैसा आश्चर्य है कि, एक छोटासा बालक हिरण्यकशिपुके वशमें नहीं आता, मानो एक चींटी हाथीको हैरान कर रही है, इन बातोंसे हरिका अधिकार तो बडा मालूम हुआ. अग्नि, जल, वायु आदि सब पदार्थ उसकी आन मानते हैं, परंतु क्या मुझको ये अधिकार देखकर कुछ भय करना चाहिये, प्राण गयेभी अच्छे आदमी

प्रण नहीं छोडते, जो हुवा सो हुआ, अब तो एकबार हरिसे सन्मुख युद्ध करिकै उसके बलकी परीक्षा करूंगा, मैं पदार्थोंके गुण नहीं बदल सक्ता तो क्या हुआ, मेरे तेजसे सब देवता छिपे फिरते हैं, मेरी भुजाओंका बल दिग्गज नहीं सह सक्ते, ब्रह्माकी सृष्टिसे मुझको कुछ भय नहीं, मैं किसी आयुधसे नहीं मर सक्ता, दिन अथवा रात्रिको नहीं मर सक्ता, पृथ्वी अथवा आकाशमें नहीं मर सक्ता, विष्णुका इतना अधिकार है परन्तु वह डरके मारे मेरे सामने नहीं आता है, अच्छा, जितना वह डरेगा उतनाही उसका बल घटैगा, अब उसे सन्मुख बुलानेके लिये प्रह्लादको तंग करता हूँ, यदि वह भयके मारे मेरे सन्मुख न आया और प्रह्लाद मारा गया तो अच्छा हुआ, संसारमें आगेको कोई उसका विश्वास न करेगा और चकमकपर प्रहार करनेसे आग प्रगट हो जातीहै इसीतरह प्रह्लादपर प्रहार करनेसे वह प्रगट होजायगा तो यह अच्छा होगा दोनों तरह अपनी जीत है ।

(अचानक प्रह्लादका प्रवेश)

प्रह्लाद–पिता ! पहलेसे सब. कामोंमें अपनीही जीत समझलेनी बडी भूल है, हार·ज़ीत हरिके हाथ है, फिर हरिविमुख कामोंमें·अपनी जीत होसक्तीहै ? मुझको आप चाहें जितनी ताडना दो, परन्तु हरिसे वैर मत करो, हरिसे वैर करनेमें आपका कहीं पता न लगैगा ।

हिरण्य०–प्रह्लाद ! तुझको इतना कठोर दंड़ हुआ, परंतु तेरी अबतक आँखें न खुलीं, तू अबतक हरिका पक्ष नहीं छोडता ।

प्रह्लाद–पिता ! मेरे जान जानबूझकर किसीके भय अथवा लोकलाजसे अधर्म करनेकी बराबर कोई कठोर दंड नहीं था, इसलिये मुझको ये दंड कुछ नहीं व्यापे, बहुत लोग जाहरी प्रतिष्ठा रखनेके लिये छिपछिपकर महाखोटे काम करते हैं, परन्तु मैं उनमें नहीं हूँ, संसारके तुच्छ आर अनित्यपदार्थोंके लिये सत्यधर्मको खो बैठना मेरे जान बडी मूर्खता है, इसलिये मैं धर्मके हेतु प्राण देनेमें भी. कुछ हानि

नहीं समझता। संसारमें धर्म अलौकिक रत्न है, धर्मकी महिमा आप देख चुके हैं, जहाँ धर्म वहां हरि, जहाँ हरि वहां जंय है।

हिरण्य०-दुष्ट ! तेरा दुराग्रह अबतक नहीं छूटता. जहां हरि है वहां जय है तो तेरे हरिने अबतक मुझको अपना कुछ पराक्रम क्यों नहीं दिखाया। तेरे हरि टट्टीकी ओझल शिकार खेलते हैं, परंतु बलवान् शत्रुके सन्मुख आकर युद्ध करनेकी उनकी हिम्मत नहीं है।

प्रह्लाद-राम राम! आपकी यह असंगत बात सुनकर हृदयं कांपता है, आप अभी मेरे प्राण लो, परंतु हरिकी निंदा मेरे सन्मुख मत करो, पिता ! यह हरिकी दयालुता है, जो आप अबतक बच रहेहो, आप अपने अधर्मका दंड अवश्य पाओगे, परंतु हरिके कोपसे नहीं, संसारके नियमसे पाओगे श्रीहरिने अपनी इच्छासे। केवल लीलाके लिये संसार रचा है, फिर वह अपनी सृष्टिमें

तुच्छ प्राणीके अभिमान भरे. वचन सुनकर उसपर क्या कोप करैं और वह कोप करै तो संसारका क्या पता लगै, हरि कुछ क्षुद्रदेवताके समान नहीं हैं, जो अपनी हानि लाभका अनुभव करके बिगाड सुधार नहीं करते, श्रीहरिकी क्षमा तो पृथिवीके समान है, वह संसारी कार्य निर्वाहके लिये पाप पुण्यका फल पहले नियत करचुके हैं, परन्तु करुणाके वशवर्त्ती होकर सदा संसारी जीवोंके हितमें तत्पर रहतेहैं घोर पापिनको भी अपने पापोंका सच्चा पश्चात्ताप होने-पर क्षमा करके वह अपने दासोंकी आतुरताके समय अपना महत्त्व भी भूल जाते हैं, पिता! ऐसे सर्वशक्ति-मान् दयालु हरिकी शरण छोडकर आप क्या सुख पाओगे ? आप अब भी अभिमान छोडकर दीनभावसे प्रभुकी शरण लो, अपने अपराधोंके लिये प्रभुके वात्सल्यगुणपर विश्वास करो, प्रभु अवश्य दया करैंगे. पिता! आपने राजवैभवका सुख तो बहुत दिन भोग-लिया अब हरिभजन करके परलोक बनाओ, प्रभुकी

नित्य कैंकर्यका सुख अनुभव करो, एकबार प्रेमपूर्वक हरिनाम संकीर्त्तन करके अपना जन्म सफल करो.

(स्वरसे) हरिबोल ! हरिबोल !! हरिबोल !!!

हिरण्य०—दुष्ट ! तू अपनी टांय टांय नहीं छोडता, मैं क्या एक अज्ञान बालकके कहेमें आकर अपना कर्तव्य भूल जाऊँगा? तू चाहे जितना बक, मैं हरिको कुछ माल नहीं समझता, उनको कुछ सामर्थ्य होय तो मेरे सन्मुख आकर अपना पराक्रम दिखावें, जो वो सन्मुख नहीं आसक्ते तो तेरी झूंठी बतबनौनीके लिये तुझको अभी मारता हूं ।

प्रह्लाद—पिता ! आप मेरे शरीरके शतखंड कर डालो, परंतु हरिसे द्वेष मत करो, अंतःकरणसे यह चाहता हूं कि, मेरी तत्काल मृत्यु होजाय, मेरे तुच्छ जीवनके लिये हरिको कुछ परिश्रम न हो ।

हिरण्य०—रे कपटी कुलांगार ! हरि यहां कहां है ? जो तु अपनी रक्षाके लिये उनसे निषेध करके उनका डरपोकपन छिपाता है ।

प्रह्लाद–पिता ! पिता ! ! हरि सबके अंतर्यामी हैं, सर्वत्र विद्यमान हैं, उनके लिये ऐसी कुतर्क करनी आपको योग्य नहीं ।

हिरण्य०–अच्छा, हरि सर्वत्र हैं तो हमको दिखा, हम यहांका तो प्रमाण नहीं मानते. संभव है कि, हरिने तुझको सिखाकर यहां भेजा हो और आप कहीं छिप रहाहो, हां ? स्फटिकमणिके सभामंडपमें तू हरिको दिखा देगा तो मैं तेरा कहना सत्य समझूंगा ।

प्रह्लाद–पिता ! हरिके सर्वत्र होनेमें तो कुछ सन्देह नहीं, परंन्तु दर्शन देना न देना उनकी इच्छाधीन है, सर्वेश्वरका ईश्वर कोई नहीं हो सक्ता.

हिरण्य०–रे कुलकलंक ! मैं जानता हूं कि, हरि मेरे डरसे कहीं छिप रहा है, उसको मेरे सन्मुख होनेका साहस नहीं है, परन्तु मैं झूठेको घरतक पहुंचा दूंगा. मेरे संग स्फटिकमणिके सभामंडपमें चल, वहां हरिको प्रकट कर, जो हरि वहां न मिला तो तेरे प्राण अवश्य हरे जाँयगे ।

प्रह्लाद—पिता ! यह शरीर आपके पापपूर्ण देहसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये इसके छोडनेमें तो मैं बहुत प्रसन्न हूं, परंतु आपकी "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" देखकर मुझको बडा शोक होता है, आप श्रीहरिसे द्वेष करते हो, इसका परिणाम आपके लिये कभी अच्छा न होगा।

हिरण्य०—तू बडा परिणामदर्शी आया, चल मेरे संग, स्फटिकमणिके सभामंडपमें चल, वहाँ तेराही परिणाम हुआ जाता है.

(प्रह्लादको घसीटकर अपने साथ ले जाताहै.)

एकादशदृश्य ११.

स्फटिकमणिका सभामंडप.

(हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद.)

हिरण्य०–इस स्फटिकमणिके सभामंडपमें कहीं ओट नहीं, सब रचना पारदर्शी है, सबमें आरपारकी चीजें दीखती हैं, बताव अब तेरा हरि यहां कहां है ?

प्रह्लाद–पिता ! हरि वायुसे अधिक सूक्ष्म सर्वत्र व्यापी हैं, उनको आवरण अथवा ओटकी कछु आवश्यकता नहीं है, जैसे वायुमें चाहे जहां बादल प्रगट वा गुप्त हो सक्ते हैं, इसी तरह हरि भी चाहे जहां प्रगट वा गुप्त हो सक्ते हैं, जैसे बादलमें सूर्य, पृथ्वी आदिका प्रतिबिंब पडनेसे उसके रंग दिखाई देते हैं, तैसेही भावना करनेवालोंकी भावनाके अनुसार श्रीहरिके भी अनेक रूप दिखाई देते हैं, जैसे विविध प्रकारके बादलोंका मुख्य–प्रयोजन वर्षाभिन्न कुछ नहीं होता, इसी प्रकार हरिके विविध रूपोंका प्रयोजन

भी संसारके हितके अतिरिक्त कुछ नहीं होता, बादल क्या ? किसी वस्तुको श्रीहरिकी उपमा नहीं बनती परन्तु जैसे गूलरकी उपमा देकर ब्रह्मांडका भाव समझाया जाता है, तैसे मैंने बादलकी अनुचित उपमा देकर आपको हरिकी कुछ व्यापकता बताई है. पिता! हरिकी महिमा अपार है, अखिल कोटि ब्रह्मांड उनके रोम रोममें व्याप्त हैं, आप उनका द्रोह छोडकर एकबार भक्तिपूर्वक हरिनाम उच्चारण करो. (स्वरसे भुजा उठाकर) हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !

हिरण्य०—(क्रोधसे) दुष्ट ! मैं तेरा उपदेश सुनने नहीं आया, तुझको मारने आया हूं, तेरे सहायक हरिको मारने आया हूं, बताव वह सर्वव्यापी है तो यहां कहां है ? इस खंभमें है? इस खड्गमें है? मुझमेंहै ? तुझमें है ? ।

प्रह्लाद—हाँ, पिता ! मुझमें, तुझमें, खड्ग, खंभमें, सब जगह हरि व्याप्त हैं; हरिसे एक परिमाणु भी खाली नहीं है ।

हिरण्य०–(अत्यंतक्रोधसे) बता, इस खंभके भीतर हरि कहां है? इसके आरपार सब दिखाई देता है (किड किडाके) तू झूँठ क्यों बोला?

प्रह्लाद–(जोरसे) पिता! हरि अपने भक्तोंको कभी झूठा नहीं होने देते. वह नयनपलककी तरह अपने दासोंकी रक्षा करते हैं, हरिके समान दीनदयालु कोई नहीं है, मेरे नयनोंसे देखो हरिकी कैसी विलक्षण मूर्ति इस समयमें इस खंभमें दिखाई देतीहै।

(खंभमें सहसा नृसिंहमूर्त्तिकी झलक दीखकर अंतर्धान होजाती है. हिरण्यकशिपु एकबार देखतेही झिटक कर हटता है. परन्तु फिर अंतर्धान होनेसे आगे बढकर)

हिरण्य०–प्रह्लाद! मुझको तो इसमें कुछ नहीं दिखाई देता, अच्छा! अब मैं तुझको इस खंभसे बांधकर खड्ग मारताहूं, जो वह इसके भीतर होगा तो इस खड्गके लगनेसे खंभ समेत तू और वो दोनों कट जायँगे.

(प्रह्लादको खंभमें बांधकर जोरसे खंभपर खड्गप्रहार करता है. खड्ग टूट जाता है. खंभ स्थिर रह जाता है परन्तु नृसिंहभगवान् वेगसे बाहर आते हैं. और बंधनमुक्त प्रह्लादखंभके बदले नृसिंहभगवान्की छातीसे लिपटा दिखाई देता है.)

प्रह्लाद–(नृसिंह भगवान्‌के चरणोंमें गिरकर गद्गद कंठसे) जय ! नृसिंह भगवान्‌की जय ! शरणागतवत्सल ! पतितपावन ! अधमउद्धारण ! अशरणशरण्य ! हरिभगवान्‌की जय !

(स्वरसे) हरिबोल ! हरिबोल ! ! ! हरिबोल ! ! !

(पुनश्च) हरिबोल ! हरिबोल ! ! हरिबोल ! ! !

(हिरण्यकशिपु प्रह्लादको हरिचरणोंसे हटाया चाहता है.)

नृसिंह–(घोर गर्जना करके) रे पापिष्ठ ! तू मेरे निजदासको मेरे चरणोंमेंसे हटाया चाहता है ? किसकी शक्ति है जो मेरे दासको मेरे चरणोंसे दूर करै ? मेरे दासके शरीरमें हाथ लगावे ? मेरे दासकी ओर आंख उठावै ? मेरे दासको दुःख देवै ? मेरे दासको भय दिखावै ? मेरे दासको सतानेका विचार करै ? (भुजाउठाकर) जो सबको छोडकर अनन्यभावसे मेरी शरण आवेगा, मैं उसके सब पाप क्षमा करके उसकी निश्चय रक्षा करूंगा, उसको सबसे अभय दूंगा, मेरा अपराध क्षमा हो सक्ता है परन्तु मेरे दासोंका कभी

नहीं होसक्ता। (प्रह्लादसे) वत्स कुछ धैर्य धरो. (प्रह्लादको अलग खडा करके हिरण्यकशिपुसे) दुष्ट ! तेरी मृत्यु आपहुँची जो तू मेरे दासको सताता है.

(क्रोधसे हिरण्यकशिपुके ऊपर झपटते हैं और हिरण्यकशिपुको पकडकर दाब लेते हैं, हिरण्यकशिपु एकबार निकल जाता है फिर नृसिंह भगवान और हिरण्यकशिपुका घोर युद्ध होता है परिणाममें एकबार झपटकर प्रभु फिर हिरण्यकशिपुको पकड लेते हैं और अपनी गोदमें लिटाकर उसका हृदय विदीर्ण कर डालते हैं, उसकी आंतमाला धारण करिके क्रोधसे चारों ओर देखतेहैं.

प्रह्लाद (स्तुति करता है)

जय प्रणतहित भंक्तवत्सल जय दयानिधि श्रीहरे।
दीनके हित दीनबंधु नृसिंहतनु धंर अवतरे॥
शेष शिव विधि शारदादिं न गाय गुण पूरण करैं।
असुर बालकहीन मति किहि भाँति गुणगण अनुसरैं
-प्रियवियोग अयोग संगम-हृदयं नित तापित रहे।
प्रभु कृपालवलेश बिनं मनको न-विधि धीरज गहे॥

सत्यरक्षक जनक तो शिशु कौन विधिदुखपावहीं।
रोगहर औषधि करै तो रुग्ण क्यों बिनशावहीं॥
जलधि तारै पोत तो क्यों मग्न होत न थिर रहै॥
सत्यरक्षक हरिशरण पकडै न कछु भय फिर रहै॥
असुर मार उधार जिहि विधि नाथ अब रक्षण कियो॥
चरणसेवा दे निरंतर कीजिये शीतल हियो॥

श्रीनृसिंह–(प्रीतिसे) वत्स! हम सदा तेरे हृदयमें बास करेंगे, इससे वियोगका दुःख नहीं व्यापेगा और काल पाकर तेरी यह इच्छा पूर्ण होगी. तेरे मनमें और इच्छा होय सो वर माँग।

प्रह्लाद–प्रभु! दासको यह वियोग असह्य है, परन्तु स्वतंत्रकी इच्छामें वश नहीं; जब आपके चरणकमल प्राप्त होगये तब क्या बाकी रहा? यही प्रार्थना है कि, इनको छोडकर मनमधुप क्षणभरके लिये विषयान्तरमें न जाय।

श्रीनृसिंह–अच्छा वत्स! ऐसाही होगा, और जो इच्छा होय सो मांग, तेरे देनेसे हमारे मनकी तृप्ति नहीं होती।

प्रह्लाद–दीनदयालु ! संसारी ज़ीवोंकी दुर्दशा देख कर मेरा चित्त अति दुःखित है, यह विचारे अज्ञान वश अहंकार ममकारमें फँसकर अतिशय क्लेश उठाते हैं। जलके मथनसे घृत निकाल कदलीवृक्षसे असार संसारमें सार खोजते हैं। गंगाजलसी भगवद्भक्ति छोड कर ओसरूप संसारी सुखोंसे निज तृषा बुझानेकी इच्छा करते हैं। भवसागर तरनेके लिये हरिभजन-सी दृढ नौका तजकर बारंबार उसीके फेन गहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोहसे बारंबार दुःसह दुःख स-हतेहैं परन्तु फिर भी उन्हींके वशवर्त्ती होकर रहते हैं, संसारमें अपना मिथ्याभिमान दिखानेके लिये ये अटपटे मार्गोंमें चलकर बारंबार ठोकर खाते हैं, परन्तु वह चाल नहीं छोडते, मायाविनी आशाके जालमें फँसकर क्षणक्षणमें बारंबार धोखा खातेहैं परंतु फिर उसी आशाके बहकानेसे बारंबार संसार सागरमें गोता लगातेहैं प्रभुके पदार्थोंको अपना समझकर अनुचित प्रीति बढानेसे बारंबार बिलबिलाते हैं परन्तु फिर उ-

न्हीं पदार्थोंको अपना बताते हैं, सब स्वार्थमें तत्पर हैं परन्तु असलमें स्वार्थकी हानिकररहे हैं, विपरीत ज्ञानसे इनको दुःख सुख प्रतीत होता है, जब भेद खुलता है पछताना पड़ताहै परन्तु फिर क्षणभर पीछे झूंठे सुखमें मग्न हो जाते हैं, प्रकृतिने इन सबको अपने वश कर रक्खा है; इसलिये ये अत्यंत दुःखित होकर भी आपकी ओर मन नहीं लगाते, नाथ ! मैं इनकी दुर्दशा देखकर अति दुःखित हूं, आप दीनानाथ होकर इनका दुःख कैसे देखते हैं, जो आप दासपर दयालु होओ, जो आप दासको और कुछ दियाही चाहते हो तो इन्हें मोक्ष दो।

श्रीनृसिंह—(मुस्कुराकर) यह हमारे अभिमुख नहीं हुये इनकी मोक्ष कैसे हो ?

प्रह्लाद-प्रभुकीपूरी दयालुता तो पापियोंको तारनेमेंहीहै,

श्रीनृसिंह—जो हम पापियोंके मोक्ष दें तो उनके पापका फल कौन भोगे ?

प्रह्लाद—(प्रसन्नतासे चरण पकडकर) स्वामी ! दासका तो स्वभावही दुःख भोगनेका पड गयाहै सब

जीवोंकी मोक्ष होजाय और उनके बदले दासको नरकवास हो।

श्रीनृसिंह-(आनंदसे प्रह्लादको गोदमें लेकर बारंबार मस्तक सूंघते हैं.) व स !तेरी परोपकार बुद्धि देखकर मैं बहुत संतुष्ट हुआ, यह भी मेरे परमभक्तोंका लक्षण है, वह अति कोमलचित्त होते हैं और अपने ऊपर दुःख सहकर दूसरेका क्लेश निवारण करनेको सदा तैयार रहते हैं, विमुख जीवोंको उनकी अभिरुचि हुए बिना मोक्ष नहीं मिलसक्ती, परन्तु तेरी जो इच्छा हो तो और वर मांग।

प्रह्लाद-(गिडगिडाकर) तो प्रभु उनकी अभिरुचि होनेके लियेही कोई उत्तम उपाय होना चाहिये

श्रीनृसिंह-तेरा उज्ज्वल चरित्रही उनकेलिये उत्तम उपाय है, संसारी लोगोंको बंधनसे छूटकर हमारे मार्गमें निष्ठ होनेके लिये तेरा उदारचरित्र परम उपकारक होगा, इसको देखकर बहुत जीवोंको हमारे

चरणोंमें प्रीति होगी और तू हमारे दासोंमें अग्रगण्य होगा । (पुष्पवृष्टि)

(ब्रह्मादिक देवता आकर प्रणाम करते हैं, इन्द्र आरती उतारता है)

सब देवता (समस्वरसे)

जय जय जय ! कृपासिंधु दीननहितकारी ।
दासहेतु असुरमार सकल विपति टारी ॥
कनककशिपु राजा कुछ प्रभुहूते भारी ।
जिनके हित भुवनपति नरहरि वपुधारी ॥
धन्य जे अनन्य होय हरिपद चित लावैं ।
मिथ्या प्रपंच त्याग जीवन फल पावैं ॥
धिक् धिक् सुरदेह विषय वासनानुरागी ।
भक्ति हीन मनमलीन स्वारथ मति पागी ॥
माँगत यह वर दयाल दीन जान दीजै ॥
हमको हरिदासनके दास दास कीजै ॥

॥ इति प्रह्लादचरित्र–नाटक समाप्त ॥ शुभम् ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस–बम्बई.

जाहिरात।

नाम.	की. रु. आ.
शाकुन्तल नाटक—गद्यपद्यात्मक पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र अनुवादित इसमें महर्षि कण्वकी पुत्री शकुन्तलाका दुष्यन्त राजाके प्रेमवश होकर परिणयकर त्यागपाना और पश्चात् मिलाप होना इत्यादिका नाटकाकार वर्णन देखने योग्य है	०—१२
हनुमन्नाटक भाषा—रामगीत सहित कवि हृदयराम कृत अतिललित सवैया काव्यमें परमोत्तम है	१—०
माधवानलकामकंदला नाटक—लाला शालिग्राम कृत, इस नाटकमें जयन्ती अप्सरा और माधवानलका विलाप अरु विपत्ति कामसेनकी सभा कामकंदलाका शृंगार अरु चतुराई और	

नाम.	की. रु. आ.
राजा विक्रमके कष्टकी शूरता और दृढता देखनेही योग्य है	०—१२
पुरुविक्रम नाटक—लाला शालिग्राम वैश्य कृत. इसमें राजा पुरूरवा और सिकंदर बादशाहकी लडाईका तो मानो फोटोही खींच दिया है. सच्चे वीर, वीर पुरुषका कैसे आदर करतेहैं यह इस पुस्तकके देखनेही से विदित होता है. ...	०—८
मोरध्वज नाटक—लाला शालिग्राम लिखित रौद्र वीर और सत्य तथा भक्तिमार्गी करुणादि रसका परिपूर्ण वर्णन है	०—८
अभिमन्यु नाटक—लालाशालिग्राम कृत. इसमें अर्जुनके पुत्र अभिमन्युका महाभारतके चक्रव्यूहमें लडके शूरता बतलाना इत्यादि वीर करुणा रस प्राधान्य है और इस नाटकको देखकर कैसाही पाषाणहृदय क्यों न हो.	

नाम.	की. रु. आ.
एकबार आँखोंसे आंसुओंकी धारा बहानेही लगेगा	०–१२
सीतास्वयंवर नाटक– ("राजा जनकका धनुषयज्ञ.) इस धनुषयज्ञमें अयोध्याधिपति कौशलेश रामचंद्रजीसे शिवधनुषका भंग होना और जनकपुत्री सीताजीका रामचंद्रजीसे स्वयंवर करना इत्यादि वर्णनहै	०–८
सीतावनवास नाटक–पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत. इसमें जनकदुलारी रामप्यारी सुकुमारी जानकी जीके वनवासका अभिनय अत्युत्तम गद्य पद्य भाषामें वर्णित है, नाटक करनेवालोंको परम उपयोगी है	०–७
द्रौपदीवस्त्रहरण नाटक–अर्थात् पांडव वन-गमन–इसमें द्रौपदीका वस्त्रहरण और भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे वस्त्रोंका बढना इत्यादि भक्तिमय कथा वर्णित है	०–८

नाम. की. रु. आ.

वेणीसंहार नाटक—पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत.
ग्रंथमें कौरव-पांडवोंका वृत्तांत वीररसप्रधान सविस्तर वर्णित है ... ... ०—१०

शीलसावित्री नाटक—सतीत्व प्रभाव: इसमें सावित्रीका पतिव्रत धर्मके प्रभावसे अपने पतिके प्राणान्त होनेपर धर्मराजको दर्शन देना, धर्मकी योगसे राजा होनेसे धर्मराजकी स्तुति करना और धर्मराजके वरदानसे अपने पतिको जीवित करना इत्यादि अपूर्व पतिव्रतधर्मका चारित्र वर्णित है ... ... ०—८

अञ्जनासुंदरी नाटक—बाबू कन्हैयालाल कृत. (अतिललित) ... ... ०—८

सोमासती नाटक—अतिरोचक वर्त्तमान समयमें स्त्रियाके सद्आचरणका प्रभाव ... ... ०—२

आनन्दोद्भव नाटक—पं० कृष्णविहारीशुक्लकृत.

नाम.	की. अ. रु.
नामहीसे आनन्द होता है और पढ़नेसे तो बढ़ा कौतूहल देख पड़ताहै ...	०—१॥
किंगलियर नाटक—बद्रीनारायण बी. ए. कृत. (शेक्सपियरका भाषानुवाद) ...	०—१०
इन्द्रसभा नाटक—(राजा इन्द्रकी सभाका वर्णन) शैर ग़जल राग रागिनियोंमें नाटकाकार	०—१
विवाहिताविलाप नाटक—एक छोटासा रूपक अर्थात् जो लोग विवाह करके अपनी स्त्रीको छोड देतेहैं और बाद छोडनेके जो दुःख और क्लेश अपने पतिके वियोगमें स्त्रियोंपर बीतताहै उनका परिणाम देखने योग्य है ...	०—३
नाट्यप्रबंध—पं० बलदेवप्रसाद मिश्ररचित नाट्यरचनामें अति उत्तम है	—०४
प्रभासमिलन नाटक—पं० बलदेवप्रसादमिश्ररचित देखनेही योग्यहै	०—१०

नाम		की. रु.आ.
भारतदुर्दशारूपक	... ...	०–३
लल्लाबाबूप्रहसन	... ...	०–२
विधवादुर्दशा नाटक	... ...	०–२
प्रेमलीला नाटक–गोपीनाथकृत(शेक्सपीयरका भाषान्तर)	... ...	१०–०
श्रीदामानाटक–(अत्यंत शिक्षारूप)	...	०–१
बीनिसकावैपारी–(सेक्सपीयर अंग्रेजीका अनुवाद) गोपीनाथ एम. ए. कृत	...	०–१२
ऊषानाटक–ऐसा कौन हिन्दू है जो ऊषाके चारित्रको न जानताहो, उसी चारित्रको ग्वालि-यर की सिनियर जुडिशियल कौंसिल व मेम्बर मजलिसखास श्रीमंत बलवंतराव भैयासाहब सिंदे ने कवितायुक्त नाटकरूपमें बनाय सोनेमें सुगंधका काम किया है	...	०–८

पुस्तक मिलनेका पता–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बंबई.